Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2021 GISRRJ | Volume 4 | Issue 1 | ISSN : 2582-0095

सोशल मीडिया और दलित पत्रकारिता (फेसबुक के संदर्भ में)

डॉ. आशा रानी
एसोसिएट प्रोफेसर
पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज (सांध्य),
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली ।

Article Info
Volume 4 Issue 2
Page Number: 01-08

Publication Issue :
March-April-2021

Article History
Accepted : 02 March 2021
Published :07 March 2021

शोध सारांश : आधुनिक भारत में भारतीय दलित साहित्य व समाज को विश्व स्तर पर पहुँचाने में दलित पत्रकारिता की विशेष भूमिका रही है। दलित संपादकों द्वारा सम्पादित पत्र-पत्रिकाओं ने दलितों के साहित्य, संस्कृति, इतिहास, समाज, धर्म, दर्शन, लोक-कलाओं को पाठकों तक पहुँचाने में अहम भूमिका निभाई है। यहाँ तक सोशल मीडिया की बात है, सोशल मीडिया एक परम्परागत पत्रकारिता का रूप न होकर इन्टरनेट द्वारा एक ऐसी दुनिया को निर्मित करता है, जो पूरे विश्व को एकसाथ जोड़ता है। यह सूचनाओं को सम्प्रेषित करने का एक त्वरित सामाजिक संचार माध्यम है जिसमें हर क्षेत्र की खबरें समाहित होती हैं। सहज उपलब्ध सोशल मीडिया क्षणभर में सूचनाओं को आग की तरह पूरे विश्व में फैलाने की क्षमता रखता है। आज यह माध्यम किसी व्यक्ति, संस्था, समूह, वर्ग और देश की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक रूप से समृद्ध करने में महती भूमिका निभा रहा है। सोशल मीडिया ने सभी को एक नया क्षितिज दिया है, मूकों को वाणी दी है। जबसे सोशल मीडिया अस्तित्व में आया है उसने ऐसे कई विकासात्मक कार्य किये हैं जिससे लोकतान्त्रिक व्यवस्था को मज़बूती मिली है और देश की परिस्थितियों में गुणात्मक सुधार देखने को मिला है। सोशल मीडिया में यदि फेसबुक माध्यम की बात करें तो इससे वर्तमान में करोड़ों लोग जुड़े हुए हैं। इस शोध पत्र में फेसबुक के माध्यम से पत्रकारिता के स्तर और उसकी उपयोगिता तथा अन्य कई पक्षों पर चर्चा व विश्लेषण किया गया है ।

बीज शब्द : फेसबुक, सोशल मीडिया, पत्रकारिता, दलित पत्रकारिता, दलित ।

सोशल मीडिया ने मुख्यधारा के वर्चस्व को तोड़ते हुए आमजन को पत्रकारिता के रूप में एक नया मंच प्रदान किया है। कई ऐसे सर्वे आ चुके हैं जो बताते हैं कि पत्रकारिता पर अब तलक एक-खास जाति और वर्ग के लोगों का कब्ज़ा रहा है। आंकड़े बताते हैं कि 'भारतीय समाचार संगठनों के कक्षों' में 1992 तक एक भी दलित पत्रकार देखने को नहीं मिला, कमोवेश आज भी कोई बेहतर स्थिति देखने को नहीं मिलती है। जितने भी दलित या पिछड़े वर्गों से पत्रकार हैं वे सोशल मंचों द्वारा अपनी सशक्त अभिव्यक्ति अपनी सामर्थ्य पर कर रहे हैं। प्रो. तेज सिंह लिखते हैं, "तथाकथित हिन्दी नवजागरण भी हिन्दू नवजागरण ही था जो सवर्ण जातियों के सामाजिक-सांस्कृतिक उत्थान के प्रति समर्पित था। उस दौर के अनेक पत्र 'हिन्दू व हिन्दू-जाति के नामों से निकले थे और उनके मालिक और लेखक भी हिन्दू ही होते थे, जो आज भी है।"[1] शिक्षा, साहित्य और पत्रकारिता में उच्चवर्णीय वर्गों का वर्चस्व होने से दलितों के

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

सरोकारों को बहुत कम महत्त्व मिला। प्रो. श्योराज सिंह बेचैन भी लिखते हैं, "उस दौर की पत्रकरिता पक्षपाती बनी। दलित वर्ग की लोकतांत्रिक भागीदारी खुद दलितों के लिए असंभव थी।"[2]

डॉ. भीमराव अम्बेडकर की पत्रकरिता को लेकर एक सुचिंतित दृष्टि रही है कि जब तक दलितों के पत्र-पत्रिकाएं नहीं होंगी तब तक हमारे विचारों को जन-जन तक संप्रेषित नहीं किया जा सकता। उस समय तक 'हरिजन' हिन्दी और हिन्दूवादी पत्रकारिता ने डॉ. अम्बेडकर के द्वारा किये सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक कार्यों का विरोध ही नहीं किया बल्कि उसकी नकारात्मक भूमिका बनाई। "तत्कालीन हिन्दूवादी पत्रकारिता के इसी रुख को देखकर बाबा साहब ने कहा कि मेरी बात नहीं सुनी जा रही और न ही कोई मेरे विचारों को सही प्रकार से अख़बार में छापता है। तब बाबा साहब अंबेडकर ने अपनी बात को जनता तक पहुँचाने के लिए स्वयं की पत्र और पत्रिकाओं को निकालना शुरू किया। कह सकते हैं कि यहीं से दलित पत्रकारिता शुरू होती है।"[3]

"आज़ादी के बाद की दलित पत्रकारिता डॉ. अंबेडकर की पत्रकरिता के बुनियादी सरोकारों से जुड़कर ही विकसित हुई है और अभी हो रही है, इसमें संदेह के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। डॉ. अंबेडकर के समाज दर्शन ने दलित-चिन्तन को एक नयी दिशा दी। दलितों में राजनीतिक समझ, सामाजिक जिम्मेदारी की भावना और सांस्कृतिक चेतना के विकास से दलित पत्रकारिता अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे रही है। दलित पत्रकारिता दलित समाज की विभिन्न समस्याओं पर निरंतर विचार कर रही थी। उस पर डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। वह आज उसी से अनुप्रेरित होकर विकसित हो रही है। "हिन्दी पत्रकारिता की सवर्ण मानसिकता का वास्तविक विकल्प दलित पत्रकारिता ही हो सकती थी। क्योंकि हिन्दी पत्रकारिता जातिवाद-वर्णव्यवस्था से उत्पन्न सामाजिक-विषमता, उत्पीड़न और वंचितों के अधिकारों के बजाय राजनीतिक सरोकारों को ही सर्वोपरि मानकर चल रही थी। सवर्ण मानसिकता के हिन्दू पत्रकारों ने उसका कारण यह बताया कि 'स्वतंत्रता आन्दोलन के समय की पत्रकारिता एक राष्ट्रीय ध्येय के प्रति समर्पित थी। उसकी वजह वह नहीं थी जो ऊपर बताई गयी है बल्कि यह थी कि हिंदी मिशनरी के ध्येय से ज्यादा व्यावसायिक रुख अपना रही थी। जबकि डॉ. अंबेडकर की पत्रकारिता मिशनरी के तहत दलितों-वंचितों की पत्रकरिता में भागीदारी के लिए निश्चित भूमिका बना रही थी।"[4]

आधुनिक भारत में दलित पत्रकारिता को जो मज़बूती मिली है उसके बारे में अश्विनी कुमार लिखते हैं, "आज लगभग बारह भाषाओँ में दलित साहित्य प्रकाशित हो रहा है। जिनमें खासतौर पर मराठी, हिन्दी,गुजराती, तेलगु, मलयालम और पंजाबी में दलित पत्रकारिता का प्रभाव ज्यादा दिखाई देता है। डॉ. अंबेडकर से पूर्व मानवीय अधिकारों की आवाज़ उठाने वाले बहुजन नायकों जिनमें महात्मा ज्योतिबा फुले, माता सावित्रीबाई फुले, पेरियार, श्री नारायण गुरु, आयंगर काली, जाषुवा, बाबू मंगूराम, कुसुम धर्मान्ना, स्वामी अछूतानन्द आदि महत्त्वपूर्ण थे।"[5]

गांधी जी और डॉ. अंबेडकर की पत्रकारिता केवल पत्रकारिता तक सीमित नहीं थी बल्कि दोनों की बहस वर्तमान और भविष्य की राजनीति और सामाजिक, सांस्कृतिक जमीन को तैयार कर रही थी। गो. म. कुलकर्णी के शब्दों में, "दलित साहित्य के वास्तविक प्रेरणास्रोत एवं अधिष्ठाता डॉ. अम्बेडकर ही हैं। दलित साहित्य और पत्रकारिता में अंबेडकर के विचारों एवं व्यक्तित्व की ध्वनि-प्रतिध्वनि निरंतर सुनाई देती है।"[6] इसके संदर्भ में योंगेंद्र यादव, अनिल चमड़िया और जितेंद्र कुमार ने 2006 में किये अपने शोध में लिखते हैं कि "भारतीय मीडिया की सबसे बड़ी विडम्बना यही है कि इसके एक बड़े हिस्से द्वारा समाजवादी या साम्यवादी होने का दावा किए जाने के बावजूद राष्ट्रीय मीडिया के 315 सबसे अधिक प्रभावशाली लोगों में से कोई भी दलित-आदिवासी नहीं है।"[7]

सीधी बात है कि ऐसे में उनके मुद्दों को गंभीरतापूर्वक उठाने की जहमत कौन उठाता? अब जाकर दलित अस्मिताओं ने कुछ अपने चैनल खोलने का प्रयास किया है परन्तु उन चैनल्स को भी सवर्ण मानसिकता स्वीकार नहीं कर पा रही।

इक्का-दुक्का चैनल्स को छोडकर मुख्यधारा के मीडिया में दलितों, वंचितों और हाशिये की अस्मिताओं के मुद्दे और चिंताएं लगभग गौण रहती हैं। मुख्यधारा मीडिया पर सवर्णों का कब्ज़ा होने से हाशिये के कई सवाल पत्रकारिता से गायब कर दिये जाते रहे हैं। खासकर दलित-पिछड़ों, महिलाओं और मुसलमानों के बारे में खबर करते हुए पत्रकारों में एक खास तरह का पूर्वाग्रह दिखाई देता है। यही वजह है कि आरक्षण जैसे संवेदनशील मुद्दों पर पत्रकारिता बेहद पक्षपाती रिपोर्टिंग करती रही है। पत्रकारिता में देखें तो रवीश कुमार और प्रसून वाजपेयी जैसे बहुत ही कम लोग हैं जो ईमानदारी और निर्भीकता से वंचितों और शोषितों की आवाज़ बन पाए हैं? शायद, मुख्यधारा मीडिया में बहुत ढूँढने पर भी कोई तीसरा ऐसा नाम नहीं मिलता जिसने ऐसे मुद्दे उठाये हों। जिन उपेक्षित विषयों पर रवीश ने लगातार काम किया है वैसी संवेदना, लगन और निष्ठा और पत्रकारों में क्यूँ नहीं मिलती? यह एक बड़ा सवाल है और उसका उत्तर यही है कि मुख्यधारा पर आज भी कब्जा ब्राह्मणवादी सोच का है। ऐसी परिस्थितियों में सोशल मीडिया का आना वंचित समाज के लिए किसी वरदान से कम नहीं है। आज सोशल मीडिया मुख्यधारा की मीडिया में एक ट्रेंड सेट करने की हैसियत में है। आज दलितों ने सोशल मीडिया पर दलित दस्तक, नेशनल दस्तक, जैसे अनेक चैनल्स, पेज और ग्रुप्स बनाएं हैं जो पूरी तरह से दलितों और पिछड़ों की समस्याओं को दिखाते हैं, उन पर चिन्तन करते हैं। वे अपने नायकों को प्रतिस्थापित कर उनकी उपलब्धियों को न केवल रेखांकित कर रहे हैं बल्कि एक नया इतिहास रच रहे हैं। सात-आठ वर्ष पूर्व तक भारत की बहुत कम आबादी थी जो महात्मा ज्योतिबा फुले, सावित्री फुले, पेरियार, बीरसा मुंडा, डॉ. अम्बेडकर के बारे में इतनी जानकारी रखती थी लेकिन सोशल मीडिया ने उनको आमजन तक पहुँचाने में अभूतपूर्व योगदान दिया है।

गूगल ने जब 2017 में क्रांतिज्योति सावित्रीबाई के जन्मदिन पर डूडल बनाया तो यह दलितों और पिछड़ों के लिए हर्षोल्लास का विषय था। सोशल मीडिया ने लगातार उनकी उपलब्धियों और सामाजिक योगदान को प्रकाशित कर उन्हें देश की पहली शिक्षिका के रूप में स्थापित किया। डेढ़ सौ साल पूर्व उन्होंने जो पितृसत्ता और स्त्री मुक्ति की परिभाषा रची वह अद्भुत है, लेकिन मुख्यधारा के साहित्य और पत्रकारिता से वे पूर्णता गायब थी। झलकारी बाई और ऊदादेवी जैसी वीरांगनाओं का इतिहास भी अँधेरे में था। यह ताकत है सोशल मीडिया की जिसने इतिहास में हाशिये पर धकेले गयी महत्वपूर्ण अस्मिताओं को एक नई पहचान दी है।

पत्रकारिता जीवन के प्रत्येक पहलू पर नज़र रखती है। एक पत्रकार के शब्दों में "समाचार पत्र जनता की संसद है, जिसका अधिवेशन सदैव चलता रहता है।" जिस प्रकार संसद में विभिन्न प्रकार की समस्याओं पर चर्चा की जाती है, विचार-विमर्श होता है, उसी प्रकार समाचार-पत्रों का क्षेत्र भी व्यापक एवं बहुआयामी है। पत्रकारिता तमाम जनसमस्याओं एवं सवालों से जुड़ी होती है, जो समस्याओं को सत्ता के सम्मुख प्रस्तुत कर बहस को प्रोत्साहित करती है। आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, विज्ञान, कल, मनोरंजन सब क्षेत्र पत्रकारिता के दायरे में आते हैं। जहाँ तक फेसबुक पत्रकारिता की बात है इसने उन सभी वर्गों और समुदायों को अपनी स्वतंत्र अभिव्यक्ति के लिए मंच प्रदान किया जो आज तक लब्ध नहीं था, जिसके कारण वे मुख्यधारा से अपने को अलग-थलग मान रहे थे। स्पष्ट शब्दों में कहा जाए तो सोशल मीडिया दलित और पिछड़े समाज के लिए उनकी तकलीफों, सूचनाओं और विषमताओं को उजागर करने का एक सशक्त माध्यम बनकर उभरा है। आज हजारों-लाखों लोग इस माध्यम से जुड़े हैं और सामूहिक रूप से अपने चिन्तन को प्रसारित कर रहे हैं। इस मंच से दलित और आदिवासी विमर्श की भागीदारी और व्यापकता बढ़ी है। फेसबुक ने विभिन्न तरीकों से लोगों के सामाजिक जीवन और गतिविधि को प्रभावित किया है। आज सोशल मीडिया से जुड़े लोग वीडियो, टेक्स्ट, तस्वीर, ऑडियो

इत्यादि से अपने समाज से जुड़े सभी मुद्दों पर चिन्तन कर रहे हैं। पहले कोई भी खबर अख़बार से टीवी तक पहुंचती थी, उसके बाद ही सोशल मीडिया में बहस का सिलसिला चलता था। आज लोग खुद ही कवरेज करके उन घटनाओं को प्रसारित करने लगे हैं जिन पर कोई सोचता नहीं था। भारतीय समाज में शुरू से ही कमज़ोर, उपेक्षित और वंचित तबके रहे हैं, लेकिन लोकतान्त्रिक आधुनिक भारत में भी उनकी स्थिति में कोई खास परिवर्तन नहीं आया। आज दलित लोग उस सामन्ती व्यवस्था का न केवल विरोध कर रहे हैं बल्कि लगातार वंचितों और पीड़ितों के मुद्दों को उठाकर न्याय और समानता की लड़ाई लड़ रहे हैं।

आज मीडिया में राजनीति, भ्रष्टाचार, हत्या, बलात्कार, सनसनीखेज खबरें महीनों तक परोसी जाती हैं, परन्तु आदिवासियों, दलितों और पिछड़े वर्गों पर होने वाले अत्याचारों की घटनाएं किसी भी चैनल का मुद्दा नहीं बन पाती हैं। शायद इसकी वजह यही है कि इन तकलीफ़देह घटनाओं में मीडिया को कोई मसाला नहीं मिल पाता। उनकी संवेदनाएं आम जन के साथ न होकर ताकतवर वर्गों के साथ रहती है, जो इन घटनाओं को अंजाम देते हैं। उनके साथ होने वाली ज्यादतियों, बर्बतापूर्ण व्यवहार की पैरवी करना उनकी पत्रकारिता का उद्देश्य कभी नहीं बन पाता। देर से सही संचार क्रांति ने इस सामाजिक उथलपुथल की जो नई इबारत लिखीं है, उसमें बहुजन समाज अच्छे से समझ रहा है कि आज़ादी की जो दास्ताँ लिखी गयी है, वह उनके लिए एक स्वप्न ही थी। वास्तव में उन्हें अभिव्यक्ति की आज़ादी अब मिल रही है। वे लगातार महसूस कर रहे हैं कि संविधानप्रदत्त अधिकारों को पाने के लिए सभी को एक मंच पर आने की जरूरत है। उन्हें पारम्परिक राजनीति और राजनीतिक दल इसमें कोई सकारात्मक भूमिका निभाते नज़र नहीं आ रहे। इसीलिए आज वे दलितों-पिछड़ों के राजनैतिक दलों की खामियों पर लगातार प्रहार रहे हैं।

सोशल मीडिया पर इन वर्गों से बुद्धिजीवियों के साथ-साथ आम जन भी दलितों, वंचितों और उपेक्षितों की समस्याओं को बड़ी संजीदगी से उठा रहा है। वह संवैधानिक अधिकारों की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध नजर आ रहा है और बड़ी कडई से होने वाले अत्याचारों का विरोध कर रहा है। ऐसा नहीं है कि ये अपराध उनके साथ पहले नहीं होते थे, बस उनको उस रूप में दिखाया नहीं जाता था। यह भी विडम्बना है कि सोशल मीडिया पर इतने बड़े हस्तक्षेप के वाबजूद दलितों के अपराधों में कोई कमी नहीं आ रही। निश्चित रूप से ऐसी अमानवीय घटनाओं से शोषक वर्गों की बर्बरता सामने आ रही है। आज जब 21वीं शती में भी संवैधानिक अधिकारों को मिलने के वाबजूद शिक्षण संस्थाओं में होने वाले भेदभावपूर्ण रवैय्ये से दलित युवाओं की आत्महत्या की घटना, शादी में घोड़ी पर चढ़ने से मौत के घाट उतारे जाने की घटना, दलित स्त्रियों के साथ बलात्कार की घटना, धनकोट जैसी दलितों को नंगा कर घुमाने की घटनाया दलितों को जिन्दा जलाये जाने की अमानवीय घटनाओं को घटते देखते हैं तो निर्विवाद रूप से साबित हो जाता है कि दलितों और पिछड़ों के लिए ये समाज कितना क्रूर और अमानवीय रहा है जो अभी भी अपने मूल चरित्र को छोड़ नहीं पा रहा बल्कि समय के साथ नकाब ओढकर ज्यादा अमानवीय और हिंसक हो रहा है।

आज देश की लगभग 50 करोड़ आबादी इन्टरनेट से जुडी है। सोशल मीडिया पर भी वर्चस्व सवर्ण लोगों का बना हुआ है फिर भी वंचित तबकों की आवाज़ भी कम नहीं है। उनकी इसी बुलंद आवाज़ ने यह सिद्ध किया है कि तीन चौथाई आबादी के सरोकारों को अनदेखा नहीं किया जा सकता व उनके सरोकारों की लड़ाई जनता के बीच आकर लड़ने की सख्त जरूरत है। सोशल मीडिया में बाबा साहब के 'मिशन पे बेक टू सोसाइटी' के लक्ष्य के तहत हर व्यक्ति अपने सामर्थ्य से सक्रिय भूमिका में नजर आ रहा है। इन्टरनेट की इस क्रांतिकारी पत्रकारिता ने बिना किसी लागत और सांगठनिक ढांचे से ऐसा आह्वान किया है जिसका उद्देश्य स्वतंत्रता, असमानता, लिंग-भेद, अंधविश्वास, भूख, गरीबी, बेरोजगारी जैसी मूलभूत समस्याओं के खिलाफ लड़ना है। बुद्ध, कबीर, ज्योतिबा, सावित्रीबाई, बीरसा मुंडे और डॉ. अम्बेडकर के न्यायिक और समतामूलक विचारों को ज्यादा से ज्यादा लोगों तक फैलाकर शिक्षा, न्याय और संघर्ष

की आवाज़ को बुलंद कर, सबको संगठित करना है। व्यक्ति, परिवार, समाज, देश और दुनिया में लोकतंत्र, नैतिकता, विज्ञान, शांति और विकास के लिए प्रतिबद्ध होना है। यह एक ऐसी आवाज़ है जिसके लिए मनुष्यता सर्वोपरि है और जो सदियों से गुलाम मनुष्यों की मुक्ति की बात करती है, जिसके केन्द में मनुष्य के सरोकार और स्वाधीनता की भावना है। इन्टरनेट की इस दुनिया ने मुख्यधारा की भूमिका को भी बदलकर रख दिया है। सबसे ज्यादा स्पेस उन वर्गों को मिला है जिनके लिए मीडिया के दरवाज़े हमेशा बंद थे जिनमें स्त्री भी शामिल है। पिछले दस वर्षों में ऐसे कई आन्दोलन खड़े हुए हैं जिनमें बहुजनों की आवाज़ बहुत प्रभावी ढंग से उभरी है जिसका श्रेय सोशल मीडिया को ही जाता है।

यह सोशल मीडिया की देन है कि वर्तमान भारत में दलित एवं पिछड़े वर्ग के संवैधानिक प्रतिनिधित्व की बहस सर्वोच्च न्यायालय तक पहुँच चुकी है। मीडिया में भी दलित वर्ग के मुद्दों को लेकर बहस नज़र आती है परंतु मीडिया के प्रमुख नीति निर्धारकों से दलित प्रतिनिधित्व नदारद है। इसलिए सोशल मीडिया में दलित वर्ग अपनी समस्याओं के साथ-साथ सत्ता और संसाधनों में हिस्सेदारी की बात बार-बार उठा रहा है। समाज में संविधान प्रदत्त समता, समानता और सौहार्द की जो भावना है वह तभी संभव है जब मीडिया के साथ-साथ अन्य क्षेत्रों में भी वंचित वर्गों को को समान प्रतिनिधित्व मिलेगा। जब सब जगह विविधता होगी तो सूचना में भी विविधता देखने को मिलेगी लेकिन दलित समुदाय को मुख्य मीडिया अधिकतर नकारता आ रहा है। फिर भी उसके संघर्षों और हौसलों की उडान बुलंद है जिसे आजका युवा अपनी प्रतिभाओं से साबित कर रहा है। इसी सोशल मीडिया ने गरीबअभावों से जूझते वंचित बच्चों की उपलब्धियों को इतना प्रसारित किया जिससे योग्यता की दुहाई देने वालों को यह मानना पड़ा कि अवसर मिलने पर कोई भी वर्ग अपनी प्रतिभा का लोहा मनवा सकता है।

सोशल मीडिया एक ऐसा माध्यम बनकर उभरा है जिसने आंदोलनों को खड़ा किया है। पिछले कुछ वर्षों से दलित वर्ग इस सामाजिक माध्यम से मुख्य धारा की मीडिया को कड़ी चुनौतियाँ दे रहा है। समुचित प्रतिनिधित्व न होने के कारण दलित वर्ग को अपने विचारों, भावनाओं और समस्याओं को देश व समाज के सम्मुख रखने के लिए फेसबुक जैसे सोशल माध्यम की तरफ अग्रसर होना पड़ा। फेसबुक संचार का बेहतर उद्धरण हम देख सकते हैं कि हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय के पी-एच.डी. स्कॉलर रोहित वेमुला की आत्महत्या के बाद फेसबुक पर सूचना प्रसारित होते ही पूरे देश में कैसे आंदोलन खड़ा हो गया था। रोहित वेमुला की सांस्थानिक हत्या के खिलाफ एकजुटता का मामला हो या आरक्षण को बचाने के लिए किये गये भारत बंद आंदोलनों की बात हो, कलबुर्गी, दाभोलकर, पानसरे, गौरी लंकेश जैसी दलित चेतनाओं की हत्या पर जो आक्रोश फेसबुक या अन्य सोशल माध्यमों पर दिखाई दिया वह कहीं अन्यत्र नहीं मिला। पिछले डेढ़-दो सालों में मोब लिंचिंग में जिस तरह दलित, आदिवासी और अल्पसंख्यक वर्ग को निशाना बनाया गया, उसपर सबसे ज्यादा सवाल भी इसी मध्यम ने उठाये हैं। हाल-फ़िलहाल देश के विभिन्न हिस्सों खासकर उत्तरप्रदेश के कठुआ, हाथरस, बलरामपुर की जितनी भी दलित बच्चियों के साथ बलात्कार की दुर्दांत घटनाएं हुई हैं, उनके लिए जितना जबरदस्त विरोध सोशल मीडिया पर हुआ और खासकर दलितों और पिछड़ों की तरफ से हुआ वह बहुत मानीखेज है। ये दीगर बात है कि सबूत होने पर भी न्याय अभी उनसे कोसों दूर है, कारण न्यायालयों में वंचितों की उपस्थिति अभी नगण्य है।

डॉ. जयप्रकाश कर्दम के अनुसार, "किसी भी विचारधारा अथवा आन्दोलन के पीछे उसका एक दर्शन होता है जिसके आधार पर विचारधारा या आन्दोलन विकसित और समृद्ध होता है। दर्शन ही वह मूल तत्व है जो आन्दोलन को पहचान और स्थायित्व देता है ।एक सुस्पष्ट और सुचिंतित दर्शन के अभाव में कोई भी आन्दोलन बहुत देर तक खड़ा नहीं हो सकता।"[8] स्पष्ट है कि दलित पत्रकरिता के मूल में अंबेडकर का सामाजिक मानवतावादी दर्शन काम कर रहा है जिसमें समता, स्वतंत्रता और न्याय का सन्देश है ।पिछले साल

उनके द्वारा चलाये 'मूकनायक' पत्र ने अपने सौ साल पूरे किये जिसमें गुलाम जातियों की पीड़ा, संत्रास और दर्द को पहली बार अभिव्यक्ति मिली थी।

इस नई दलित चेतना से सर्वप्रथम समाज का साक्षात्कार फेसबुक जैसे सोशल माध्यम के द्वारा ही संभव था। इसके अलावा राजस्थान की दलित छात्रा डेल्टा मेघवाल की घटना, ऊना में मरी गाय की खाल उतार रहे दलितों की पिटाई का वीडियो वायरल घटना, भीमा कोरे गाँव की घटना हो, महाराष्ट्र की डॉ. पायल तड़वी की घटना आदि की सूचना जैसे ही फेसबुक के माध्यम से समाज तक पहुँचती है, एक नई स्फूर्ति के साथ आंदोलन खड़ा हो जाता है जबकि इन आंदोलनों के पीछे कोई पूर्व योजना अथवा संगठन की नहीं था। हाल ही में दिल्ली के तुगलकाबाद में स्थित गुरु रविदास मन्दिर के तोड़े जाने की खबर मुख्यधारा की पत्रकारिता से पूरी तरह से विलुप्त है। जबकि कई राज्यों में बड़ी संख्या में लगातार इस सामाजिक कुकृत्य का विरोध हो रहा है और 21 अगस्त 2019 को देशव्यापी आन्दोलन भी हुआ। यह खबर सोशल मीडिया के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक पहुँच चुकी थी और विदेशों में भी इसका विरोध हुआ। सडकों पर आक्रोश में आये सैलाब को केवल फेसबुक व अन्य सोशल साइट्स पर ही दिखाया जा रहा था। यह दलित वर्ग का अपने अधिकार, समाज के प्रति दायित्व की चेतना का परिणाम है।

फेसबुक माध्यम को संचार का माध्यम बना कर दलित वर्ग प्रतिकार के साथ अपने अधिकार की मांग भी उठा रहा है। वह कहना चाहता है कि अब पहले जैसा नहीं चलेगा। यह दलित वर्ग के मानवीय अधिकार और मानवीय गरिमा की प्रतिष्ठा का प्रश्न है। जब लगभग सारे मुख्य मीडिया के सारे माध्यम किसी एक खास राजनैतिक दल के अधीनस्थ होकर काम कर रहे हैं, सही सूचनाओं को दिखाने की बजाये छिपाने में लगे हैं तो सोशल मीडिया ही एकमात्र ऐसा साधन है जो सच को सामने लाकर प्रसारित कर रहा है। रोहित वेमुला, सोनी सोरी, आदिवासियों की जमीन की लड़ाई, सरकार और उसकी पुलिस का सच, डाक्टर ताडवी की आत्महत्या, संसथानों में अब तक की जा रही नियुक्तियों की धांधलियों का क्रूर सच कभी भी सामने नहीं आ पाता यदि सोशल मीडिया ने एक सक्रिय विपक्ष की भूमिका न निभाई होती। निश्चित रूप से सोशल मीडिया की यह पत्रकारिता जनसरोकारी है। जनता के करीब होने का ही नतीजा है कि ऊना में हुए दलितों पर जुल्म के बाद के गुस्से को पूरे देश में फैला दिया गया। तेजबहादुर यादव सेना के भोजन की खराब हालत पर विडियो पोस्ट करता है, तो हंगामा हो जाता है और फिर चुनाव में भी उतरता है। भले षडयंत्र कामयाब होते हैं पर सत्ता की कलई पूरी तरह से खुल जाती है।

गत 8-10 वर्षों से देखें तो प्रत्येक गाँव-कस्बों तक मोबाइल ने अपनी पहुँच बनाई है। जिस सूचना को मुख्य धारा की पत्रकारिता अनदेखा कर रही थी वही सूचना सोशल मीडिया की पत्रकारिता के केन्द्र में आ गयी है। आज भारत के सभी दलितों की समस्या एक हो गयी है। फेसबुक पत्रकारिता का सकारात्मक प्रभाव यह रहा कि दलित, आदिवासी और पिछड़ा वर्ग एकता के सूत्र में बंधने लगा है। वर्तमान में सुदूर प्रांत में किसी का भी शोषण अथवा अत्याचार होता है तो वह सिर्फ सूचना भर नहीं होती वरन सम्पूर्ण देश में इन वर्गों को संवेदनात्मक स्तर पर एकत्रित होने की सशक्त पहल भी है, जो डॉ. भीमराव अंबेडकर के मूल मंत्र 'संगठित रहो', 'शिक्षिक बनो' और 'संघर्ष करो' को चरितार्थ करती दिख रही है। फेसबुक को देखें तो रवीश कुमार, उर्मिलेश, दिलीप सी. मण्डल, अनिल यादव, मीना कोटवाल आदि नामी पत्रकारों के साथ चंद्रशेखर रावण, जिग्नेश मेवाणी, अनुज लुगुन, कंवल भारती आदि ने फेसबुक को पत्रकारिता का माध्यम बनाया। इन सभी पत्रकारों के साथ-साथ देश के प्रतिष्ठित संस्थानों से अकादमिक जगत के लोग भी दलित मुद्दों को बड़ी गंभीरता से उठा रहे हैं, जिनमें डॉ. रतनलाल, डॉ. राजकुमार, प्रो. कालीचरण स्नेही, प्रो. हेमलता महेश्वर, डॉ. ओमसुधा, डॉ. अजय नावरिया, डॉ. नामदेव, डॉ. के. पी. यादव, डॉ. हंसराज सुमन, डॉ. बलराज सिंहमार, डॉ. सुनील कुमार सुमन, डॉ.

रजतरानी मीनू, डॉ. नीलम, डॉ. रजनी अनुरागी, डॉ. कौशल पंवार, डॉ. संदीप कुमार, डॉ. सुजीत कुमार, डॉ. देव कुमार, डॉ. लक्ष्मण यादव, डॉ. अनीता भारती, डॉ. हीरा मीणा, डॉ. नूतन यादव जैसे हजारों बुद्धिजीवी सक्रिय हैं जो दलित पत्रकारिता में अभूतपूर्व योगदान दे रहे हैं। इसके इलावा दलित एक्टिविस्ट के रूप में हजारों-लाखों फोलोवर्स, शोधार्थी फेसबुक को पत्रकारिता का माध्यम बनाए हुए हैं। आने वाले समय में इन आंकड़ों में आशातीत बढ़ोत्तरी की संभावना है। आज लाखों लोग फेसबुक पर पत्रकारिता के अलावा साहित्य के माध्यम से भी अपने सामाजिक सरोकारों और भावनाओं को अभिव्यक्ति कर रहे हैं। दरअसल जिस तरह से सोशल मीडिया पर ब्राह्मणवादी सोच का वर्चस्व बना हुआ था, मैं अपने अनुभव से यह कह सकती हूँ कि उसे इस शिक्षित समाज ने बहुत हद तक तोडा है। इन्होंने लगातार हाशिये की अस्मिताओं के प्रश्नों को उठाकर बहसों-मुसाहिबों से दलित विमर्श और अन्य विमर्शों की एक पुख्ता जमीं तैयार की है। देश के विभिन्न संस्थानों में होने वाली दलित संगोष्ठियों व सम्मेलनों को सचित्र प्रस्तुत करने से यह आवाज़ दूर तक जा रही है। बहुत हैरानी होती थी यह जानकर कि दलित और आदिवासी रचनाकारों और उनके रचनाकर्म से ज्यादातर लोग अनभिज्ञ थे। जिन्हें पढ़ने की कभी जहमत नहीं उठाते थे, आज इन रचनाकारों को न केवल पढ़ा जाता है बल्कि उनके लेखन को सराहा भी जाता है। अनिल चमड़िया ने अपने आलेख 'दलित संसदीय राजनीति और दलित मीडिया' में बहुत स्पष्ट लिखा है कि "समाज में बुनियादी परिवर्तन लाने वाले मीडिया का निर्माण करने की बजाय हमारे नेता उसका इस्तेमाल अल्पकालिक राजनैतिक लाभ पाने के लिए करते हैं। पूरे देश में दलित मीडिया के ढांचे के खड़े नहीं होने की वजहें बहुत साफ हैं। मीडिया के ढांचे के लिए एक गतिशील वैचारिक अवधारणा जरूरी है।"[9] यह प्रबुद्ध वर्ग इसी ओर बढ़ रहा है। अभी पीछे एक सुखद समाचार यह आया था कि बहुजन समाज ने अपना बहुजनबुड खोला है जो अस्मिता विमर्श के लिए रचनात्मकता की एक नई संभावना लेकर आएगा। अर्जुन सिंह ने इस बहुजन वैचारिकी की पहल की है जिसमें दलित आंदोलनों और मुद्दों पर 6 फिल्में बनाने की योजना है। यह सुखद सूचना भी फेसबुक से ही फैली। डॉ. जयप्रकाश कर्दम के शब्दों में, "डॉ.अंबेडकर के विचार और मान्यताएं ही दलित साहित्य का आधार और प्राण है। किसी भी विधा में लिखा जाने वाला दलित साहित्य डॉ. अंबेडकर के इन्हीं विचारों से प्रेरित और अनुप्राणित है।"[10] यही बात दलित पत्रकरिता पर भी लागू होती है क्यूंकि आज हर आन्दोलन का आधार डॉ. अंबेडकर की विचारधारा बनी है ।

खबरों को छुपाने के कारण आज मीडिया हाउस पर विश्वसनियता का संकट गहरा हो चला है। दलितों की जंतर-मंतर पर रैली होती है, उसमें जनसैलाब उमड़ता है, फिर भी हिन्दी के संपादक उसे अपने यहां जगह नहीं देते। सम्मेलन होते हैं, दलित नेताओं की रैलियों में भीड़ उमड़ती है, उनके द्वारा किये सराहनीय काम भी दिखाए नहीं जाते केवल उन्हें जातिवादी दिखाई देता है, लेकिन वही रैली फेसबुक के माध्यम से लाखों लोगों तक पहुंचने का सामर्थ्य रखती है। आज के दौर में हर कोई पत्रकार है। किसी भी जगह बैठकर लोग अपनी भाषा में जैसे चाहें खबर पहुंचा रहे हैं जिसके लिए उनका किसी वर्ग या जाति विशेष का होना अनिवार्य नहीं है। ऐसे अनेक पत्रकार हैं जो सिर्फ फेसबुक पर लिख रहे हैं, वे अपनी नौकरी करते हुए भी अपने भीतर के सजग पत्रकार को ज़िन्दा रखे हैं।

नकारात्मक पक्ष

फेसबुक के नकारात्मक प्रभाव का संज्ञान लेना भी अत्यंत आवश्यक है। दलित वर्गों के साथ यहाँ भी ज्यादती होती है। वे जब अपने साथ होने वाले अन्याय और भेदभावपूर्ण रवैय्ये की आवाज़ उठाते हैं तो उन पर आरोप लगाया जाता है कि वे गलत सूचनाओं का प्रसारण, भड़काऊ भाषा और हिंसा को बढ़ावा दे रहे हैं। जबकि हाशिये की अस्मिताएं अपनी पीड़ा को अभिव्यक्त कर मानव समाज की बेहतरी का संदेश देने की कोशिश कर रही हैं। मुझे याद है अब भी देखती हूँ दलित मुद्दों की, आरक्षण की बात करते ही लोग अपमानित करने में नहीं चूकते। सोशल पत्रकारिता जनता के हाथ में है। उनके द्वारा संचालित है। हज़ारों-लाखों लोग पहली बार अपनी बात कह

पा रहे हैं, अपनी खबर दुनिया तक पहुंचा पा रहे हैं। उनकी अभिव्यक्ति में आक्रोश भी है जिससे इसके कुछ खतरे भी हैं, जिन्हें दर्ज किया जाना ज़रूरी है। व्हॉट्सएप, फेसबुक आज फर्ज़ी खबरों का जमावड़ा भी बन गया है। इतने ग्रुप सक्रिय हैं कि इन सबके पीछे असली दोषी कौन है, पहचान में नहीं आता। ये खबरें लोगों को उकसा रही हैं, भीड़ को हत्यारा बना रही हैं, ऐसी कोई व्यवस्था नहीं जहां से इन खबरों को रोका जा सके। एक सभ्य नागरिक होने के नाते हमें सोशल मीडिया के हिंसक भीड़तंत्र वाली पत्रकारिता से भी बचना चाहिए। उसके खतरे से अपने आसपास लोगों को आगाह करना चाहिए, फर्ज़ी खबरों, अफवाहों से बचना चाहिए। साइबर क्राइम के प्रति भी सचेत होने की जरूरत है। सोशल मीडिया को लोग हथियार की तरह इस्तेमाल करने लगे हैं। हाल के कुछ आंदोलनों में इस मीडिया का प्रभावी तरीके से इस्तेमाल होने से सरकार लगातार सोशल मीडिया पर शिकंजा कसने के प्रयास में लगी हुई है ताकि देश की बहुसंख्यक आबादी की आवाज़ को पहले की तरह से दबाकर रख सके, जोकि अब संभव नहीं लगता।

निष्कर्ष :

अंत में कह सकते हैं कि सोशल मीडिया आज दलितों और पिछड़ों के लिए मुख्यधारा का मीडिया बन गया है जिसने उनके अस्तित्व से परिचय करवाने में अहम भूमिका अदा की है। इसके उपयोग में थोड़ी सतर्कता व सावधानी से दलित और पिछड़े अपने समाज के लिए और भी बेहतरी के लिए काम कर सकते हैं। अपनी विचारधारा को जन-जन तक पहुंचा सकते हैं और उनमें जागरूकता ला सकते हैं। दलितों और वंचितों के लिए यह एक परीक्षा का भी दौर है चूंकि अपने हकों की आवाज़ उठाने के कारण लगातार उन्हें इन मंचों पर दवाब और तनाव झेलना पड़ता है। इसलिए इस माध्यम का सदुपयोग करते हुए उन्हें अपनी जिम्मेदारी का परिचय देना चाहिए। वैकल्पिक मीडिया के कारण आज उनकी आवाज़ ताकतवर होती जा रही है। महानगरों से लेकर शहरों, गाँव, कस्बों यानि घर-घर तक एक चेतना की लहर दौड़ रही है, जो आने वाले समय के लिए एक शुभ संकेत है और उनके लिए रूढ़ियों, जड़ताओं, पूर्वाग्रहोंऔर कुंठाओं से मुक्ति का मार्ग भी। मेरा मानना है कि **दलित पत्रकारिता के इतिहास को जब भी लिखा जायेगा तो सोशल मीडिया की पत्रकारिता को मज़बूती से दर्ज किया जाएगा जिसने गरीबों, मजलूमों और शोषितों की अभिव्यक्ति को एक उन्मुक्त उडान दी** जो सही मायनों में लोकतान्त्र की अवधारणा को चरितार्थ करती है।

संदर्भ सूची :

1. आज का दलित साहित्य, डॉ. तेज सिंह, दिल्ली : आतिश प्रकाशन, 2000, पृष्ठ. 105
2. हिन्दी की दलित पत्रकारिता पर पत्रकार डॉ.अंबेडकर का प्रभाव, श्योराज सिंह बेचैन, पृष्ठ.15
3. भारतीय दलित पत्रकारिता, अश्वनी कुमार, नई दिल्ली : स्वराज प्रकाशन, 2019, पृष्ठ. 12
4. भारतीय दलित पत्रकारिता, अश्वनी कुमार, नई दिल्ली : स्वराज प्रकाशन, 2019, पृष्ठ. 1
5. भारतीय दलित पत्रकारिता, अश्वनी कुमार, नयी दिल्ली : स्वराज प्रकाशन, 2019, पृष्ठ. 27
6. डॉ. महीप सिंह, संचेतना (दलित साहित्य : एक चिन्तन) दिसम्बर-मार्च, 1981-82, अंक -4, पृष्ठ. 68
7. https://www.newslaundry.com/2020/12/01/digital-mainstream-media-journalist-dilip-mandal-upper-caste-domination
8. रमणिका गुप्ता, (सम्पादकीय) युद्धरत आम आदमी- (दलित साहित्य का दर्शन) जनवरी-मार्च 2002, पृष्ठ- 9
9. https://www.pravakta.com/dalit-participation-in-the-media/
10. डॉ. जयप्रकाश कर्दम, इक्कीसवीं सदी में दलित आन्दोलन : साहित्य एवं समाज चिंतन, पंकज पुस्तक मंदिर, नई दिल्ली, पृष्ठ- 49